Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 10 | ISSUE : 8 | AUGUST 2024

झारखंड में संस्कृति एवं शिक्षा का स्थाई प्रभाव

आशीष कुमार [1]

[1] शोधर्थी, शिक्षाशास्त्रा, राध गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ़ (झारखण्ड).

ABSTRACT:

-

KEYWORDS:

-

PAPER ACCEPTED DATE: 29th August 2024

PAPER PUBLISHED DATE: 30th August 2024

किसी क्षेत्रा के औद्योगीकरण को अगर विकास का एक मापदण्ड माना जाय तो यह भी जरूरी होता है कि उस विकास के प्रभाव को मापने का एक तरीका उस क्षेत्रा में शिक्षा के प्रचार–प्रसार को माना जा सकता है। ब्रिटिशकालीन भारत में औद्योगीकरण का जो प्रभाव आदिवासी समाज के अन्य क्षेत्रों पर पड़ा और जिसका आकलन पीछे के अध्यायों में किया गया है, उसके संदर्भो में यह अन्वेषण करना कि ब्रिटिश उद्योग नीति का आदिवासी शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ा जरूरी है। ब्रिटिश उद्योग नीति ने आदि जगत की शिक्षा को प्रभावित किया चाहे यह खास कर आदिवासी समाज को प्रभावित किया हो या नहीं। इसका तात्पर्य यह है कि आदिवासी क्षेत्रा के औद्योगीकरण की प्रक्रिया–चाहे मंद रही हो या तीव्र–विभिन्न तरह के कार्यों की जरूरतों के अनुकूल आदिवासी और गैर–आदिवासियों के बीच शिक्षा प्रचार तथा बाहर के शिक्षित लोगों को उस क्षेत्रा में ले जाने की क्रिया ने आदिवासी समाज को प्रभावित किया।

प्रारंभिक चरण की शिक्षा :

चूँकि आदिवासी क्षेत्रा में कम्पनी के शासनकाल में उद्योगों को न दिए जाने वाले तरजीहों के कारण समस्त आदिवासी जगत की अर्थव्यवस्था पिछड़ी कृषि पर, जो निम्न जीवनमान को कायम रखने के ही स्तर तक विकसित थी, निर्भर रहना पड़ रहा था। उत्पादन के तीरके, विनिमय–वितरण आदि की संरचनात्मक स्थिति भी इतनी न पछिड़ी थी कि वह वस्तुगत स्थिति बन सके जहाँ शिक्षा का विकास उत्पादकता और सामाजिक बाहरी संरचनाओं के निर्माण के लिए अत्यावश्यक हो। कम्यून की अर्थ–व्यवसाी और स्वतंत्रा ग्राम इकाई के रूप में काम करने वाले आदिवासी ग्राम स्वतंत्रा आर्थिक इकाई भी बने रहे जो अपनी परम्परागत स्थितियों से बँध्कर चलते थे। सरकार ने यानी ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापार, जो प्रायः जल मार्गो से होता था। इन जंगलों और पहाड़ी क्षेत्रों में आयात–निर्यात का किसी केन्द्र को विकसित करे, न तो यह सम्यक् था और न जरूरी। इस प्रकार आदिवासी क्षेत्रों में उस तरह के व्यापार आदि के केन्द्र नहीं बन सके जो समुद्र के किनारे बन रहे थे और जहाँ विभिन्न तरी के कार्यो के लिए पढ़े–लिखे लोगों की जरूरत रहती आई थी और कम्पनी को बाध्य होकर भी सामान्य शिक्षा के प्रबंध्न के लिए कई तरह के अनुदान देने को मजबूर होना पड़ा था। इस मामले में आदिवासी क्षेत्रा उन स्थितियों को रख रहा था जो शिक्षा के प्रति कम्पनी शासन की उदासीनता को बल प्रदान कर रहे थे।

फिर भी अंग्रेज इस बात को जानते थे कि राजनीतिक सत्ता की बरकरारी की एक शर्त है, शासक वर्ग की संस्कृति की भी शासित वर्ग की संस्कृति पर विजय प्राप्त करना। राजनीतिक सत्ता के साथ अन्य कारकों की जिन अहम् भूमिकाओं को बनाए रखना जरूरी होता है उनमें शासकों की शिक्षा नीति की भी बड़ी भूमिका रहती है। चूँकि आदिवासी जगत में औद्योगिक विकास का कार्य प्रायः अवरोधपूर्ण क्रम में चलता रहा इस कारण आधुनिक शिक्षा का प्रचार–प्रसार आदिवासी क्षेत्रों में उस प्रकार नहीं हो सका जिस प्रकार समुद्र के किनारे वाले क्षेत्रों खासकर बंदरगाह–शहरों के क्षेत्रा में हो रहा था। पिफर भी आर्थिक और राजनीतिक हमलों के जिसे ब्रिटिश उपनिवेशवाद भारत के ऊपर कर रहा था, साथ–साथ उपनिवेशवादी सांस्कृतिक और शैक्षणिक हमलों की योजना भी अंग्रेज उपनिवेशवादी बनाये और मुख्यतः इनका कार्यान्वयन इसाई मिशनरियों के द्वारा जिसे एक धर्मिक संस्था के रूप में पेश किया जाता रहा, संचालित किया। मिशननियों के बाहरी ढाँचे को इस प्रकार संगठित किया गया कि वह एक अराजनीतिक और परोपकारी संस्था के रूप में दरपेश हो सके और उसके पीछे की राजनीति अस्पष्ट रूप से सामान्य भारतीयों की समझ से बाहर रहे। वह क्षेत्रा, जिसमें ईसाई मिशनरियों की सम्भवतः सबसे ज्यादा प्रसार हुआ, शिक्षा का क्षेत्रा था और खासकर आदिवासी क्षेत्रों में। ऐसी नीति ब्रिटिश शासन का एक अभिन्न अंग थी और इसके द्वारा कम्पनी से लेकर ब्रिटिश संसद के शासनकाल तक यह प्रयास होता रहा कि शिक्षा के माध्यम से आदिवासी जगत को ऐसा ढाला जाय तो अंग्रेजपक्षी मनोवृत्ति वाला बन जाय।

ब्रिटिश नीति में ईसाई मिशनरियों और आदिवासी शिक्षा :

संथाल परगना के क्षेत्रा में सबसे पहले इसाई मिशनरी की स्थापना करने वाला ई.सी. जॉनसन एक सैनिक सेवा से सेवानिवृत्त व्यक्ति था, जो बंगाल के वीरभूमि जिले के मुख्यालय सूरी से कार्य करता था। यही वह व्यक्ति था जो एक नार्वेवासी एल.ओ. स्क्रेपफर्सड को उस समय कार्यरत बाप्टिस्ट मिशन और संथाल्स (बी.एम.एस.) में बहाल किया था। स्क्रेपफर्सड ने ही बाद में उन नीतियों का निर्धारण किया जिन्हें मिशनरियों ने बाद के कालों में अपनाया और उसके कार्यान्वयन में कठोर परिश्रम किया तथा शासनकर्ताओं की एक कॉलोनी का निर्माण भी संथालों के बीच में किया। इस प्रकार यह कतई चौंकाने वाली बात नहीं रह गई कि स्क्रेपफर्सड बाद में चलकर बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर एन्ड्रूज पफेजर तथा उत्तर पश्चिम प्राप्त के गवर्नर सर विलियम्स क्यूस का व्यक्तिगत दोस्त भी बन गया। अब ब्रिटिश–इण्डियन कॉलोनी के पूँजीपति, उद्योगपति और पूर्व नौकरी पेशा वालों ने लंदन तथा इंडियन वर्ग में विभिन्न तरह की समितियों का निर्माण कर इंडियन होम मिशन टू दि संथाल्स (आई.एच.एम.एस.) की मदद करनी शुरू की। अब स्क्रेपफर्सड ने आसानी से नानाकार जिला में एक जमींदारी की खरीद कर ली और 1887 में प्रथम ईसाई मिशनरी की स्थापना अपने चार साल के उस क्षेत्रा में आवास के अन्दर ही कर दी। इस मिशन को मदद करने वाला वर्ग ब्रिटिश उद्योगपतियों का था जिसे भारत के शोषण से अकूत लाभ प्राप्त हो रहा था।

यह ध्यान देने की बातें हैं कि अपनी स्थापना के बाद से इस मिशनरी ने अपने शाखा विस्तार के लिए उन्हीं जगहों को चुना जहाँ अंग्रेजों के तथा स्थानीय शोषकों के खिलाफ संथाल जनता ने जंगजू विद्रोह किया था और मुख्य लड़ाईयाँ लड़ी गई थी। यह भी उल्लेखनीय है कि आदिवासी जनता को जब सबसे पहले ईसाई बनाया जाने लगा था तब यह कार्य सरकार के सहयोग से सम्पन्न होता रहा था। इसका प्रमाण मात्रा धेन परगना

के चार मामलों से स्पष्ट हो जाता है। चारों मामलों से वैसे लोग सम्ब(थे जिन्होंने मिशनरियों का विरोध किया था तथा जिन्हें जेल का सजा इसी कारण दी गई थी और उन्हें बाद में अपने कार्यों के लिए झुकने को बाध्य किया गया। 1973–74 के अकाल के वर्षों में एक अन्य मिशनरी बोयेरसेन को, राहत कार्यों का प्रभारी बनाकर सरकार ने मिशनरियों के महत्व की स्थापना का भरपूर प्रयास किया और उसे एक जनहित की संस्था के रूप में प्रतिष्ठित करने में भारी मदद पहुँचाई। अकाल में व्याप्त भूखमरी का तो ऐसा शोषण किया गया कि राहत को 'बापटिज्म' से जोड़ दिया गया और भूखी जनता के सामने ऐसा दृश्य उपस्थित कराया गया कि रोटी का मतलब ही 'बापटिज्म'। पफलतः 1 जनवरी 1873 में इसाईयों की जो संख्या मात्रा 285 थी वह अकाल के बाद 2000 से ज्यादा हो गई, और 1982 तक यह 1.58 लाख तक चली गई।

आदिवासी शिक्षा और मिशनरियाँ :

नीतिगत रूप में आदिवासी जगत में शिक्षा संबंधी अपनी नीतियों में ब्रिटिश सरकार ने मिशनरियों को मुख्य वाहक मानकर चली। आदिवासी क्षेत्रा के देहाती हल्मों में सर्वप्रथम स्कूल खोलने का काम दि इन्डियन होम मिशन टू दि संथाल (ई.एच.एम.एस.) ने किया। 1867 में इस क्षेत्रा में सबसे पहला स्कूल बानागारिया में खोला गया। इस स्कूल के खोलने का उद्देश्य भी मेकालेवादी शिक्षा नीति की ही तरह ऐसी शिक्षा देने का उपाय कर रहा था जो व्यवस्थापरक विचारों को लोगों में भरे और मिशन के कार्यों के लिए काडरों को तैयार कर सके। शिक्षा की ऐसी व्यवस्था में, जिसे मिशनरियों ने आदिवासी क्षेत्राों में चलाया– खासकर उत्तर–पूर्वी भारत के क्षेत्रों में– उसमें शायद ही पूर्व से वर्तमान कम्यून प्रथम को कोई महत्व दिया गया। ये 'कम्यून' प्रथा आदिवासी अर्थव्यवस्था समान संरचना, सांस्कृतिक निर्माण और राजनीति आदि जैसे, क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कारक के रूप में काम करते आ रहे थे। उराँवों के धुमकुरिया और मुखेरपा या आवो नागाओं के मोसंग, या गारो के नोकपायरे या मिकिर के पेसंग या वीरहोर के गिसियोरा या गोण्ड के घोटूल, को जिस तरह उनके मौलिक संस्थाओं के द्वारा शिक्षा देने की जरूरत थी, वह शायद ही ध्यान में रखा गया। पफल यह होने लगा कि आदिवासी समाज के प्रति अपनाई गई शिक्षा नीति ने न तो उन्हें पश्चिमी शिक्षा में पूर्ण दक्ष बनाया और न ही उन्हें अपनी परम्परागत विधियों के प्रति स्थिर रहने दिया।

मिशनरियों ने सबसे पहले जिन 30 छात्रों को शिक्षित किया उनमे से 20 को बापटिस्ट कर दिया गया और बाकी 10 भी धर्मिक कार्यों में ही लगाए गए। मिशन ने इस तरह के कार्यों को सरकारी सहयोग या नीति के साथ मिलकर ही कर रही थी जैसा कि ओलाव होइन कहते हैं, 'कोई सरकारी शिक्षा संस्था 1883 तक आदिवासी संथालों में नहीं था। जब सरकार संथालों को किसी नौकरी, सेवा आदि के कार्यों के लिए बहाल करती थी तब मिशनरियों में शिक्षित आदिवासियों में से ही बहाल करती थी।' हालाँकि शिक्षितों की संख्या ज्यादा नहीं थी, पिफर भी इस तरह के शिक्षित आदिवासी यानी क्रिश्चियन संथाल आदिवासी 1859 के विद्रोह में अहम् भूमिका निभाए थे। कहने का मतलब है कि मिशनरियों द्वारा शिक्षित लोगों की भक्ति को ब्रिटिश राज्य के प्रति बना देने का काम भी मिशनरियाँ कर रही थी।

शिक्षा के प्रति सरकार की उदासीन नीति का प्रभाव रहा कि सम्पूर्ण शिक्षा का क्षेत्र मोटा–मोटी मिशनरियों के कब्जे में चला गया और खासकर लड़कियों की शिक्षा के संबंध में तो यह तथ्य इतना व्यापक बन गया कि लड़कियों के सभी आवासीय विद्यालय मिशनरियों के हाथों में ही रहे। आज भी दुधनी, महारों टोराई जितादो, संत मेरी नारायणपुर आदि स्कूलों पर मिशनरियों का कब्जा है हालाँकि दुमका का लखी कुण्डी और बरहैत सरकार के अधीन है पिफर भी बहुत से मामलों में इन पर भी चर्च का प्रभाव स्पष्ट दिखता है।

ब्रिटिश शिक्षा नीति की गलत दिशा :

प्रथमतया अंग्रेजी राज में शिक्षा को प्रायः मिशनरियों के जिम्मे तो छोड़ ही दिया था द्वितीय शिक्षा और रोजगार या शिक्षा और जीविकोपार्जन के परस्पर सम्बन्धें के मामले को भी पूर्णतः नजरअंदाज किया गया। ब्रिटिश राज में अर्थव्यवस्था का प्रबंध्न चाहे भू–स्वामित्व को बदलकर या कतिपय गृह और लघु प्रोसेसिंग उद्योगों की स्थापना कर– जिस तरह किया गया उसमें आदिवासी जनता सामाजिक उत्पादन सम्बन्धें में उस स्थान पर पफेंक दी गई जहाँ उसे अकूत गरीबी मिली थी। यह जनता मूलतः खेत मजदूर, बटाईदार, ठेकेदारी की मजदूरी आदि करने वाली रह गई थी। ऐसी हालत में शिक्षा नीति की भूमिक यह होनी चाहिए थी कि वह इन दरिद्रीकृत आवाम की आर्थिक स्थितियों में सुधर कर विकास की मुख्य धरा के साथ इन्हें जोड़ने का काम करती मगर ब्रिटिश शिक्षा नीति में ऐसा कुछ दर्शनीय नहीं रहा। ऐसी शिक्षा नीति ने आदिवासी जनता को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा राजनीतिक आदि हर स्तर पर विलगाव की स्थिति को पैदा किया।

हालाँकि मिशनरियों ने आदिवासी शिक्षा के लिए उनकी भाषाओं को संहिता करने का कुछ काम किया, जो मूलतः अलिखित ही रहा और जिससे संथालों ने हो या मुण्डा जनजातियों अन्य जनजातियों की अपेक्षा, भाषाओं की तुलना में संथाली भाषा का विकास कुछ ज्यादा हो गया। मिशनरियों ने कुछ अन्य भाषाओं को भी सिलसिलेवार संगठित किया जिनमें मुण्डारी और कुरूखीन को लिया जा सकता है, जिन्हें लिखित स्वरूप प्रदान किया गया। यह भी प्रयास किया गया कि आदिवासी बच्चों को उनकी अपनी भाषा में शिक्षा देने का काम किया जाय। संथाली भाषा को मैट्रिक स्तर की शिक्षा के काबिल बनाया गया और इसमें संथालियों की भी अहम् भूमिका कही जा सकती है, मगर विडम्बना यह है कि मिशनरियों की शिक्षा उन्हीं आदिवासियों तक सीमित रह गई जिन्होंने ईसाई धर्म को कबूल किया।

हालाँकि आदिवासियों में अपनी लिपि के प्रति जागरूकता आ रही थी मगर इस काम में सरकारी मदद, प्रयास तथा अनुदान आदि की कमी ने इसे कभी भी साकार नहीं होने दिया। हालाँकि आदिवासियों की सम्पन्न संस्कृति, परम्परा आदि के प्रति कई विचारवान लोगों ने अपनी आस्था का इजहार किया था, फिर भी उनकी बदहाल आर्थिक स्थिति ने इसने काफी रोड़े अटकाए और आदिवासी नृत्य, कविता, नाटक, लोकगीत आदि पर इस नीति के कारण घोर संकट आ गए। खासकर लिपि का प्रश्न भी ऐसा प्रश्न था जो आदिवासी शिक्षा की जरूरतों के लिए बाधा बन रहा था। ब्रिटिशकालीन भारत में आदिवासी शिक्षा को उनकी भाषा में दिए जाने के लिए एक सर्वमान्य लिपि की जरूरत थी जिसे न तो सरकार, न मिशनरियाँ ही विकसित कर पाई। यह समस्या आजतक बनी हुई है। हाल के वर्षों में आदिवासी नेता राम जयपाल सिंह ने स्वीकार किया था कि अगर अलचीवी लिपि को सभी मुण्डारी भाषा समूहों को सर्वमान्य लिपि मान ली जाती तो समस्या का निदान हो सकता था, मगर न तो ब्रिटिश और न स्वतंत्रा भारत की सरकार ही ऐसा कोई प्रावधन कर पाई।

ब्रिटिशकालीन भारत में आदिवासी शिक्षा की जो नीति रही उसमें शिक्षा को विकास का एक अनिवार्य शर्त मानकर दिए जाने की प्रवृति का प्रायः अभाव देखा जाता रहा, यही कारण था कि आदिवासी शिक्षा में जो आपूर्ति का परिदृश्य रहा, यानी आदिवासी को आदिवासियों के द्वारा शिक्षित किए जाने की जरूरत वह हमेशा उपेक्षित रहा। मिशनरियों के द्वारा शिक्षा देने वाली संस्थाओं या स्कूलों में ज्यादातर पादरियों, ननों आदि को पढ़ाने का काम सौंपा जाता रहा जो या तो मूल रूप से ब्रिटिश या यूरोपीयन को या ध्र्मपरिवर्तन के द्वारा क्रिश्चियन बनाए गए शिक्षक ही थे। वर्ग 1 से वर्ग दस या ग्यारह तक शिक्षकों की आपूर्ति में भी कठिनाईयाँ रही, क्योंकि किसी योजनाब(ढंग से शिक्षा का काम नहीं किया जा रहा था। सरकार की मूल रूचि इसी बात में रहती थी कि उसके कामों के लिए अँग्रेजी जानने वाली ऐसे लोग मिल सकें जो दफ्तरों में किरानी या लिखा पढ़ी का काम अंग्रेजी माध्यम से करके सरकार के उस खर्चे को बचा दें जो वह इंग्लैण्ड से लोगों को लाकर ज्यादा तनख्वाह देकर करात है। यही कारण था कि व्यापारिक शहरों जैसे कलकत्ता, मद्रास, मुम्बई, विशाखापट्टनम आदि जगहों में शिक्षा की एक ऐसी योजना सरकार के द्वारा चलाई जाती रही जो ऊपर की माँगों की पूर्ति कर सके। मगर आदिवासी जगत को यह सुविधा इस कारण नहीं मिल सकी कि वह व्यापारिक केन्द्रों के रूप में उभरा ही नहीं।

चूँकि ब्रिटिश सरकार का चरित्रा एक औद्योगिक पूँजीवादी सरकार का था इस कारण इसने इसी तरह की नीतियों का अनुसरण पुस्तकों के लेखन और छपने के संदर्भ में अपनाई। 1867 में जब आदिवासी क्षेत्रा में पहला स्कूल खुला तभी एक छपाखाना की स्थापना भी मीनागढ़िया में की गई और शुरू के सभी साहित्यिक छपाइयों का काम इसी प्रेस से होता रहा। शिक्षा को धर्मिक शिक्षा से जोड़ दिए गए थे और 100 साल के भीतर इस छापाखाने ने करीब जिन 400 से भी ज्यादा पुस्तकों की छपाई की उनमें से तीन–चौथाई ईसाई ध्र्म से संबंधित साहित्य रहे बाकी स्कूल के प्रारंभिक पुस्तकें रही तथा आदिवासी जनता की परम्पराओं, धर्मिक अनुष्ठानों आदि पर लिखी गई थी। ओ.पी. वेडिंग एक ऐसा आदमी रहा जिसको आजतक संथाल धर्मिकता, परम्परा, लोकगीतों, लोकनृत्यों आदि के बारे में लिखा। मिशनरियों को आदिवासी संस्कृति आदि के संबंध में तथ्यों को जमा करने के लिए साधुवाद दिया जा सकता है मगर उन्होंने सम्पूर्ण शिक्षा जगत को धर्मिकता के दायरे में ला खड़ा कर दिया। मिशनरियों के प्रबंध्न में शिक्षा का मूल उद्देश्य इसाई ध्र्म प्रचार था और शिक्षित करने का काम गौण। 26 जनवरी, 1867 में ही एल.ओ. स्क्रेपफर्सड ने, जो बिहार के आदिवासी क्षेत्रा का सबसे पुरानी मिशनरी थी मार्निंग स्टार को लिखा था कि अगर ईश्वर ने आदिवासियों की परम्पराओं के प्रति, जिनके प्रति आदिवासी इतने गहरे रूप से जुड़े हैं, हमलोगों के दिल में यह भाव न पैदा किया होता कि हमलोग उसका इस्तेमाल करें तो हमलोगों का काम अपेक्षाकृत ज्यादा कठिन होता। इन परम्पराओं का अध्ययन करने के बाद ही हमलोग सपफलतापूर्वक इन लोगों से निपट सकें। 1873 में एलेक्जेण्डर द्वारा, 1893 में कैम्पवेल द्वारा, 1912–16 में मैकफेल द्वारा और अन्त में 1929–36 में पी.ओ. बोर्डिंग द्वारा संथाली भाषा के शब्दकोष इसलिए तैयार कराये गए कि संथालों को परम्पराओं के संबंध में अंग्रेजी हर लोग ठीक से पढ़ सकें।

अंग्रेजों की मिशनरियों द्वारा इस तरह के प्रयास का कतई अर्थ नहीं था कि वह संथाली भाषा की तरक्की के लिए काम कर रही थी, बल्कि संथाली–अंग्रेजी या अंग्रेजी–संथाली शब्दकोषों का निर्माण तो अंग्रेजी जानने वालों को संथाली भाषा को पढ़ाना था ताकि मिशनरियों के माध्यम से या अन्य प्रयासों से वे आदिवासी लोगों के जीवन में, उनकी परम्परा, संस्कृति आदि की जानकारी लेकर प्रवेश करें ताकि धर्मिक कार्यों के करने में सुविधा हो सके। मगर इस प्रकार के प्रकाशनों में जिन चीजों को प्रकाशित किया गया– खासकर आदिवासी गीतों और पदों के प्रकाशन में उनमें बहुत सी ऐसीा सामग्रियाँ थी जो आदिवासी जनता की धर्मिक भावनाओं के खिलाफ तथा उसे ठेस पहुँचाने वाली थी। बेनगारिया से प्रकाशित पुस्तकों में, जिनमें प्रार्थना सम्बन्धी गीतों आदि का संग्रह किया गया उनमें कई गीतों को इस तरह से रखा गया कि उनसे आदिवासी देवताओं जैसे मारानबुरू तथा अन्य बोन्गासों का अपमान होता है। एक जगह तो मारानबुरू को शैतानों का देवता कहा गया है। मिशनरियों द्वारा प्रकाशित संथाली भाषा के पत्रों आदि में ऐसी कथा–कहानियाँ मौजूद रही जो आदि जनता और उनकी देव आत्माओं के लिए अपमानजनक बातों को कहती रही। इस प्रकार की छपी पत्रिकाओं का वितरण मिशनरियों में पढ़ने वाले आदिवासी छात्रों के बीच लगातार प्रचारित की जाती रही। इनके अलावा बहुत सारे साहित्य थे जो आदिवासी परम्परा, देवी–देवताओं, तीज–त्योहारों आदि को बड़े ही अपमानजनक ढंग से तोड़–मरोड़ कर प्रकाशित करते रहे जिनमें मुख्यतः संथाल कोआक सोसटोर पुधैर्ह जुआन्के, अपनारते अ(नांक, पिकासो चाटियार आदि का नाम लिया जा कसता है। सबसे बढ़कर छोटारी देश माँझी है जो सबसे अपमानजनक बातों को लिखता है और जो संथाली भाषा में अंग्रेजों द्वारा लिख गया संभवतः प्रथम किताब है। इस किताब में 1855 के संथाल विद्रोह के नायकों की कहानियों को लिखा गया है तथा कानू–सि(जैसे नायकों को भगोड़ा और आवारा के रूप में चित्रित किया गया है। इस प्रकार मिशनरियों के प्रयास से यह हमेशा अंग्रेज सरकार कोशिश करती रही कि राष्ट्रीय चेतना के उभरते ज्वार को धर्मिकता, रंग–भेद, आदिवासी–गैर–आदिवासी आदि जैसे विवादों को लाकर खड़ा कर दिया जाय और उन्हें इसमें सपफलता भी मिली जो कार्य अंग्रेजी सरकार स्वयं नहीं कर सकी उसको उसने मिशनरियों के माध्यम से पूरा करने का प्रयास किया और सफलता पाई।

मिशनरियों की शिक्षा और कार्यों का प्रभाव :

मिशनरियों के द्वारा शिक्षा के कार्यों को सम्पादित कराते हुए ब्रिटिश सरकार जिस राजनीतिक उद्देश्यों को पूरा कर रही थी वह आदिवासी जगत ही नहीं सम्पूर्ण भारत के लिए विभाजनकारी था। इस काम में अंग्रेजी सरकार और मिशनरियों की मिलीभगत का ज्वलंत प्रमाण था कि इन मिशनरियों ने इसाई बनाने में आर्थिक उपायों को तो लागू किया ही साथ ही साथ अंग्रेजी सरकार के साथ मिलकर आदिवासी विद्रोहों को दबाने में ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की मदद की तथा दमनात्मक उपायों को भी लागू किया। खासकर 1855 में संथालों का जो विद्रोह हुआ था उसमें इन मिशनरियों का काम था दमनात्मक उपायों के द्वारा भी आदिवासी जनता को दबाकर ब्रिटिश गुलामी में रखने का उपाय करना।

इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्रा में काम करने के नाम पर लगी संस्थाओं का जो राजनीतिक चरित्रा था वह उपनिवेशवाद को बरकरार रखने की ही एक योजना का अंग बना रखा, जो वैचारिकता के आधार पर आदिवासी जगत को ब्रिटिशपक्षी बनाने और जरूरत पड़ने पर दमनात्मक कार्रवाइयों का सहारा लेकर भी इस उद्देश्य की पूर्ति कर रहा था। इन तथाकथित शैक्षणिक संस्थाओं का उपयोग सरकार किस तरह कर रही थी इसका एक ज्वलंत प्रमाण 1874 में आया अकाल था, जो इनके लिए वरदान बनकर आया। सरकार ने बोयरेसन के राहत कार्यों की देख–रेख का प्रभारी बना दिया जिसने स्क्रेपफर्सड के साथ मिलकर तबाह हो हरे आदिवासी लोगों को इसाई बनने पर मजबूत किया और जो लोग काम और मजदूरी करना चाहते थे उनके सामने इसाई बनने की शर्तें रखी जाती थी। जी. केरी ने, जो टाइम्स के अकाल संवाददाता के रूप में बेनगारिया यह देखने गया था कि राहत कार्य कैसे चल रहा था, अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट लिखा कि बोयरेसने क्या कर रहा था। उसने लिखा कि बोयरेसने प्रति रोज सैकड़ों को इसाई बना रहा था और तब उन्हें राहत सामग्री देता था। 1892 के अकाल में भी इसे ही दोहराया गया और हजारों को मजबूर कर इसाई बना दिया गया। डॉ॰ ओ. होडने ने लिखा, अकाल के समय सैकड़ों लोगों ने बापटिज्म को अपनाया और चर्च की सदस्यता में करीब 2000 लोगों को दर्ज किया गया जो बापटिज्म को अपना कर आए थे।

अपने ऐसे कृत्यों से मिशनरियों ने आदिवासी जनता को खासकर संथलिों को दो परस्पर विद्वेषपूर्ण समूहों में विभाजित कर दिया और अपने व्यवहार से ऐसी स्थिति खड़ी कर दी कि उनके परस्पर आर्थिक स्वार्थों का टकराव भी लाजिमी होता गया। अब आदिवासी या संथाल इसाई और संथाल गैर–ईसाई का दो दल बना दिया गया और दोनों के प्रति किए जाने वाले व्यवहारों में भी अन्तर किया जाने लगा। अस्पतालों में इलाज में गैर–इसाई संथालों से ज्यादा पैसे लिए जाते, उनके बच्चों का नामांकन नामंजूर किया जाता, छात्रावासों में स्थान नहीं दिया जाता और इसाई संथालों तथा गैर–इसाई संथालों के बीच गैर–इसाई संथालों के संबंध में अपमानजनक भाषा में भाषण किए जाते। गर्मी के दिनों में जो कैम्प संगठित किए जाते उनमें विदेशों के इसाई बुलाये जाते और वे कैम्पों के अपने भाषणों में उपनिवेशवाद के खिलाफ चलाये जाने वाले आदिवासी संघर्षों के खिलाफ विषवमन करते और ब्रिटिश राज को आदिवासियों का उ(रक बताते। इस तरह उन्होंने सम्पूर्ण आदिवासी जगत को दो समूहों में विभाजित करने की अपनी नीति का कार्यान्वयन कर दिया।

आदिवासी समाजों के अध्ययन के बाद अंग्रेजों ने यह जानकारी हासिल कर लिया कि किस तरह आदिवासियों को एक–दूसरे के खिलाफ खड़ा किया जा सकता था। अब आदिवासियों की परम्परागत ग्राम परिषदों को भी इस्तेमाल कर विभेदों की जड़ को मजबूत करने का प्रयास किया जाता रहा। स्क्रेपफर्सड की इन आदिवासी घातक नीतियों को सरकार और मिशनरियों दोनों ही का भरपूर सहयोग मिल रहा था और ऐसे कार्यों को अंजाम देने के लिए जो आदिवासी जगत में पफूट पैदा करे, एजेंटों की बहाली की जाने लगी और इनका एक दल खड़ा किया गया। इतना ही नहीं जमीन की सामूहिक ग्राम मिल्कियत को भी बर्बाद किया गया। इसके कई संगठित प्रयास किए गए जिनमें अंग्रेजी सरकार की पूरी सहानुभूति रही। इसी का एक उदाहरण था इसम में स्क्रेपफर्सड के द्वारा 1881 में ही एक संथाल कालोनी को बसाया जाना और इसमें संथालों तथा अन्य आदिवासियों के लिए एक भिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक ढाँचा को खड़ा करने के प्रयास का परीक्षण किया गया। यहाँ पर उन्हें खतरा इस कारण नहीं था कि कालोनी के चारों तरफ जो आदिवासी थे वे दूसरे आदिवासी जाति समूह के थे। इस कालोनी के संबंध में डॉ॰ होडने ने कहा था कि इसका मूल उद्देश्य था कि यह इसाइयों की बस्ती हो और यहाँ के नियमों में मुर्गा की पूजा करना, जो आदिवासी करते हैं, शराब बनाना, बेचना, पीना आदि जो आदिवासी परम्परागत ढंग से करते आ रहे हैं, आदि वर्जित रखा गया शुरू–शुरू में असम की कालोनी ने बहुत से आदिवासियों को आकृष्ट किया था, क्योंकि बिहार में उनके आन्दोलनों के प्रतिरोध्स्वरूप, महाजनों का, जिन्हें सरकारी सहयोग प्राप्त था, दमन का भय था, बहुतों की सम्पत्तियाँ बर्बाद हो चुकी थी आदि–आदि। असम की कालोनी में जमीन प्राप्त कर लेने और जीविका चलाने के संसाध्नों की एक आशा उन्हें वहाँ जाने को उत्प्रेरित कर रही थी। मगर उस कालोनी में संथालों के बहुत से त्योहारों जैसे जन्म, छठियार, काको छठियार, भंडन छठियार आदि को प्रतिबंध्ति कर शादी–ब्याह आदि के नये तरीके लागू किए गए थे। यहीं से यह प्रथा चली कि शादी–ब्याह के लिए चर्च की मंजूरी ली जाय, जो आज भी कई जगह वर्तमान है। इसका परिणाम हुआ कि आदिवासी ग्राम परिषदों के शादी–ब्याह संबंधी अध्किारों को प्रायः लुप्तप्राय किया गया और उनकी पकड़ आदिवासी समाजों पर ढीली पड़ने लगी। इस प्रकार आदिवासी समाज को यहाँ भी दो हिस्सों में बाँट देने का बड़ा कुचक्र रचा गया और यह शिक्षा नीति के अन्दर किया जा रहा था।

REFERENCES

1. बनर्जी, मात गोविंद, ए हिस्टोरिकल आउटलाइन ऑपफ प्रि॰ ब्रिटिश, छोटानागपुर, रांची, 1993
2. के॰ बागे, ए हिस्ट्री ऑपफ द नेशनल क्रिश्चियन काउंसिल ऑपफ इण्डिया ;1914–64द्ध, नागपुर, 1964
3. बीरोतम, बी. झारखंड : इतिहास एवं संस्कृति, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, नगर, पटना
4. केसरी, वी. पी. छोटानागपुर का इतिहास कुछ सूत्रा कुछ संदर्भ, रांची, 1979
5. भारत 2014 प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
6. इण्डिया टुडे : आउटलुक ;मासिक पत्रिकाद्ध
7. दैनिक समाचार पत्रा प्रभात खबर